International Journal of Advanced Research in Arts, Science, Engineering & Management (IJARASEM)

ISSN: 2395-7852 | www.ijarasem.com | Bimonthly, Peer Reviewed & Referred Journal|

| Volume 8, Issue 3, March 2021 |

आधुनिक कहानी में दलित चिंतन

Dr. Shriram Barkodia

Associate Professor in Hindi, Government College, Jaipur, Rajasthan, India

सार

दलित अस्मिता को दलित विमर्श के रूप में चिह्नित करने का श्रेय डॉ॰ बी॰ आर॰ अंबेडकर को जाता है। इसके अंतर्गत समाज का वह वर्ग आता है जिसे समाज से अलगा कर देखा जाता रहा है। सवर्णों द्वारा दबाया अथवा कुचला गया यह वर्ग अपने हितों की रक्षा के लिए तथा समाज में अपनी स्थिति को सुधारने के लिए उठ खड़ा हुआ। उसने अपना एक अलग इतिहास तथा साहित्य रचा। मराठी में शरणकुमार लिंबाले, हिंदी में ओमप्रकाश वाल्मीकि सरीखे विचारकों ने दलित साहित्य के सौंदर्यशास्त्र को गढ़ा। दलित विमर्श की शुरुआत मराठी साहित्य से मानी जाती है किंतु उसका प्रभाव हिंदी साहित्य पर भी देखने को मिलता है। सन् १९१४ की महावीरप्रसाद द्विवेदी के संपादन में निकली 'सरस्वती' में हीरा डोम की पहली दलित कविता 'अछूत की शिकायत' प्रकाशित हुई। इस कविता में पहली बार दलितों पर हो रहे अत्याचार को स्वयं दलितों द्वारा दर्शाया गया। दलितों के संपूर्ण जीवन को उनकी समस्याओं सहित विस्तार से रेखांकित करने वाली ओमप्रकाश वाल्मीकि की आत्मकथा 'जूठन' सन् १९९७ में प्रकाशित हुई। सवर्णों ने जूठन पर अनेकों आरोप भी लगाए। इस आत्मकथा के पश्चात् अनेकों दलित आत्मकथाएँ लिखी गईं। उपन्यास, कहानी लिखी गईं। यहाँ तक कि दलित रचनाकारों ने अपना एक सौंदर्यशास्त्र भी बनाया। मसलन- ओमप्रकाश वाल्मीकि का 'दलित साहित्य का सौंदर्यशास्त्र', शरण कुमार लिंबाले का 'दलित साहित्य का सौंदर्यशास्त्र' उनके इसी प्रयास का परिणाम है।

परिचय

प्रेमचंद की विशेषता यह है कि वह वर्ग के आर्थिक शोषण के पक्ष को कभी अपनी नजर से ओझल नहीं होने देते। आखिर इस शोषण को बरकरार करने के लिए ही जो जात - पात , धर्म - अधर्म और ऊँच - नीच का तामझाम तैयार किया है। प्रेमचंद ने एक अछूत जाति के पात्र को नायक बनाकर क्रांतिकारी कार्य किया , सूरदास में गांधी की छवि उतारकर और भी बड़ा काम किया और धर्म - न्याय - सत्य की लड़ाई लड़ने के कारण उसे भारत के वीर - त्यागी महापुरुषों की परंपरा से जोड़ दिया। वह अंधा है , भिखारी है , पर उसकी अंतर्दृष्टि प्रबल है। उपन्यास के सभी सवर्ण पात्रा - राजा - महाराजा , शासक , उद्योगपति आदि सभी उसके सम्मुख श्रद्धा से झुकते हैं तथा उसकी श्रेष्ठता को स्वीकार करते हैं। उपन्यास के अंत में उसका बलिदान गांधी के बलिदान से कम नहीं है।[1] अतः ‘ रंगभूमि ’ तो दलित जाति के नायक को गांधी का प्रतीक बनाकर उसे समाज के शिखर पर स्थापित करती है , न कि किसी जाति का अपमान करती है। सूरदास प्रेमचंद की महान एवं कालजयी सृष्टि है और दलित जाति के लिए तो वह गौरव का केंद्र है। भारतीय समाज में व्याप्त वर्ण - व्यवस्था , जाति , अस्पृश्यता शोषण , दमन , उत्पीडन के खिलाफ संघर्ष की लंबी प्रक्रिया रही है। प्राचीन समय से लेकर आज तक अन्याय और वर्चस्व के विरूद्ध सामाजिक परिवर्तन के लिए धार्मिक , सामाजिक , सांस्कृतिक और राजनीतिक आंदोलन चलते रहते हैं। समय और काल परिवेश के अपने दबावों के फलस्वरूप यह आंदोलन तीव्रता और ठहराव से गुजरते हुए नया आकार पाता रहा है। सामाजिक परिवर्तनों की प्रक्रिया को अग्रसर करते हुए तथा तमाम आयामों से गुजरते हुए दलित वर्ण - व्यवस्था के बस एक सशक्त आंदोलन और ग़भीर चिंतन है।[1]

अंग्रेजों के भारत पर आधिपत्य ने भारतीयों के प्रमोद और जड़ता को तोड़ दिया। उन्होंने गुलामी की छटपटाहट को अनुभव किया और देश को आजाद कराने के लिए करवट बदली। परिणाम स्वरूप जीवन संघर्ष बढ़ा और साथ ही साथ जातीय जीवन की भी जागृति हुई। भारतवासी संगठित होकर स्वतंत्रता संग्राम में कूद पड़े। तभी से नवजागरण की शुरुआत हुई मानी जाती हे। सही मायने मे 1857 के गदर के बाद ही भारत में नवजागरण की शुरुआत हुई। भारतवासियों में नवजागृति का संचय होने के बावजूद कई परिवर्तन आए। यह परिवर्तन किन्हीं एक क्षेत्र में नहीं बल्कि समाज के हर क्षेत्र में आया , चाहे वह क्षेत्र धार्मिक , राजनैतिक या फिर सामाजिक ही क्यों न हो।[2]

ISSN: 2395-7852 | www.ijarasem.com | Bimonthly, Peer Reviewed & Referred Journal|

| Volume 8, Issue 3, March 2021 |

'दलित' में अस्पृश्य जातियां तो थी हीं, पर उसमें वे सब नीच जातियां भी थीं जो जुलाहा, धोबी, दलित, गड़रिया, महरी, सपेरा, माली, मदारी, भुनगी, पासी, कंजड़ आदि जातियों के रूप में जानी जातीथीं। 'दलित' का अर्थ है- जो जीवन में जाति, धर्म, अर्थ, व्यवसाय आदि सभी दृष्टि से दलित है, पिछड़ा है, दमित है, निरक्षर और निर्धन है तथा उच्च वर्णों की सेवा जिसका धर्म है, जो शूद्र जाति-वर्गसम्मिलित किया जाता है। इस दलित समाज की जागृति एवं उत्थान के लिए दलित लेखक साहित्यकी रचना कर रहे हैं, अपने अनुभूत सत्यों को रचना में बड़ी यथार्थता के साथ उद्घाटित कर रहे हैं, और कुछ गैर दलित लेखक परानुभूति के आधार पर ही सही, दलित-यातना का एक नई दृष्टि से चित्राण कर रहे हैं तो इससे दलित-विमर्श को शक्ति एवं व्यापकता मिलेगी और जातिवाद की क्रूरताओं तथा दमन-शोषण के कुछ नए चेहरे भी सामने आएंगे। दलित लेखक यदि जातिवाद करना चाहते हैं तो गैर दलित लेखकों के बहिष्कार एवं उपेक्षा से उनके लक्ष्य की सिद्धि में कमजोरी आएगी तथा दलित साहित्य के प्रति शंका उत्पन्न होगी। गैर-दलित लेखकों कासाहित्य-प्रेमचंद और निराला का साहित्य, दलित-विमर्श को पूर्ण बनाता है तथा 'द्विज साहित्य' तथा 'दलित साहित्य' के विभाजन को साहित्य की मूल आत्मा के विरुद्ध मानता है। दलित-विमर्श में 'स्वानुभूति' एवं 'परानुभूति' की दो आंखें हैं, दो अनुभूतियां हैं जो दलित-विमर्श में एकाकार हो जातीहैं और उसे ठोस एवं समग्र रूप प्रदान करती हैं।[3]

आर्थिक क्षेत्र के अन्तर्गत खेती में सुधार हुआ। जो पहले हल एवं अन्य उपकरणों से खेती होती थी वहाँ आज नये उपकरणों एवं पद्धतियों का इस्तेमाल होने लगा है, आधुनिक वाहन व्यवहार का विकास हुआ। रेल्वे बस व्यवहार आदि की शुरुआत हो गई। जिससे उद्योग धंधे को काफी फायदा हुआ और माल का आयात- निर्यात होने लगा। आधुनिक उद्योगों का विकास होने लगा। वाहन व्यवहार तथा संदेश व्यवहार ने आधुनिक उद्योगों के विकास में काफी योगदान किया। जिसकी वजह से आर्थिक क्षेत्र में प्रगति हुई। उसमें प्रेस तथा पत्र व्यवहार, डाक, तार और टेलीफोन ने 'सोने में सुहागा' का कार्य किया। सामाजिक क्षेत्र में लोगों में जागृति लाने के लिए कई संस्थाओं की स्थापना हुई जैसे ब्रह्मसमाज, आर्य समाज, रामकृष्ण-मिशन, थियोसॉफिकल सोसायटी, वेद समाज आदि मुख्य हैं। जिन्होंने समाज में चल रही कुरीतियों जैसे कि सती प्रथा, बाल-विवाह, बालकी को दूध पीती करने का रिवाज, विधवा-विवाह, ऊंच-नीच के भेद-भाव, नारी स्वतंत्रता, नारी-अधिकार, नारी-शिक्षा, नारी उद्धार का विरोध आदि समाज की संकीर्णताओं का विरोध, परम्परावादिता का विरोध आदि समाज की अनेक कुरीतियों का विरोध करके समाज में सुधार लाने का प्रयास किया गया जिसके परिणाम स्वरूप नवजागरण का फैलाव हुआ।[2]

विचार-विमर्श

धार्मिक क्षेत्र में कई परिवर्तन आए जैसे एकेश्वरवाद का प्रतिपादन और बहुदेववाद का खण्डन, मूर्तिपूजा और बालप्रथा का विरोध, परम्पराओं के अन्धानुकरण का विरोध, धार्मिक सहिष्णुता का प्रतिपादन आदि। इसकी वजह से लोगों की सोच में परिचर्तन आया। छुआछूत जैसा अब कुछ समाज में नहीं रहा। लोगों की सोच में यह परिवर्तन नवजागरण की देन है। इस क्षेत्र में कई परिवर्तन आए जैसे सेना का आधुनिकीकरण हुआ, वही वटी तंत्र की पुनः व्यवस्था की गई। नवजागरण की वजह से भारत को आजादी प्राप्त हो सकी। शैक्षणिक क्षेत्र में भी नवजागरण की वजह से परिवर्तन आया जैसे स्त्री शिक्षा की शुरुआत होना, विदेश में पढ़ाई करने के उद्देश्य से लोगों का जाना, शिक्षण की तरफ लोंगों का जागरूक होना आदि। नवजागरण ने देश के हरेक कोने में लोगों की सोच में गहरा प्रभाव डाला और लोगों की सोच में परिवर्तन भी आया।[4] साहित्य भी इस परिवर्तन से अछूता नहीं रहा। जहाँ पहले श्रृंगारिकता, भोग, विलास के पदों के माध्यम से साहित्य की रचना की जाती थी, वहाँ 1857 के गदर के बाद नवजागरण की शुरुआत होने पर ही भारतेन्दु का आगमन हुआ, जिन्होंने 'नरेश युग' का अन्त करके 'जनयुग' की शुरुआत की। उनकी 'भारत दुर्दशा' नवीन युगीन भारत को लेकर चलती थी और तभी से हिन्दी साहित्य में नवजागरण देखने को मिलता है। ब्रजभाषा तथा अवधी को छोड़कर साहित्य अब खड़ीबोली में लिखा जाने लगा जो अब जनभाषा बन चुकी थी। नवजागरण की वजह से यह परिवर्तन मुमकीन हुआ और यह परिवर्तन हिन्दी साहित्य का सबसे बडा एवं महत्वपूर्ण परिवर्तन है क्योकि यही भाषा जनभाषा होने की वजह से अब साहित्य को आम् जनता भी आसानी से पढ़ सकने लगी एवं लेखकों के संदेश एवं उद्देश्य को अच्छी तरह से आत्मसात करने लगी। आजादी प्राप्त करने

International Journal of Advanced Research in Arts, Science, Engineering & Management (IJARASEM)

IJARASEM

ISSN: 2395-7852 | www.ijarasem.com | Bimonthly, Peer Reviewed & Referred Journal|

| Volume 8, Issue 3, March 2021 |

में यह बहुत बड़ी जरूरत भी थी कि लोग देश में हो रहे कार्यों को समझे और उसमें भाग लें, जिसे साहित्यकारों व लेखकों ने अपनी रचनाओं के माध्यम से पूरा किया।[3] प्रेमचंद ने साहित्य में प्रवेश लगभग उसी समय किया जब राजनीति में गांधीजी ने प्रवेश किया था।[5] प्रेमचन्द को आर्दशोन्मुख यथार्थवादी कथाकार, गाँधीवादी, समाज सुधारक आदि कहकर यही प्रकट किया जाता है कि वे गांधीवाद से प्रभावित होकर और उनके सिद्धांतों के अनुसार रचना करने वाले कथाकार थे। गाँधीजी से प्रभावित होकर उन्होंने कई राष्ट्रप्रेम संबंधित कहॉनियाँ लिखी हैं - जिसमें सांसरिक प्रेम और देश - प्रेम, आल्हा, यह मेरी मातृभूमि है, मृत्यु के पीछे, सुहाग की साड़ी, राजभक्त, जुलूस, पत्नी से पति, शराब की दुकान, आहुति, जेल, आदि मुख्य है। प्रेमचंद ने समाज के हरेक पहलू को लेकर कहानी की रचना की है तथा उन्होंने अपनी कहानियों के माध्यम से लोगों को समाज के कुरीति - रिवाज, तथा जीवन की कठोर वास्तविकता, महाजनों के निष्ठुर पंजों से मुक्ति की छटपटाहट के लिए किसानों का विद्रोह, नौकरी पेशा, मध्यम वर्ग का अल्पवेतन, अंध संस्कार, अछूतों की दरिद्रता - ताड़ना, क्रांतिकारी देशभक्तों का उबलता आक्रोश, मानवीय विश्वासों के विरुद्ध धर्म के नाम पर ढोंग, न्याय के नाम पर नीति कुशल घूसखोर, विचारकों के कुचक्र, विदेशी शासन के दोष आदि सभी प्रकार को उजागर किया है। इन्हीं समस्याओं के आधार पर उन्होंने लोगों में नये युग के विचारों को भी प्रतिपादित किया है ताकि अपना देश तथा देशवासी पुरानी रूढ़ियों से मुक्त होकर नये भारत का निरूपण एक जुट होकर कर सके।[4]

परिणाम

सदियों से जिसे साहित्य और समाज में हाशिए पर फेंक दिया गया था। जिसे शुद्ध, हरिजन, अवर्ण, पंचम, अतिशूद्र आदि नामों से विहित करके दया का पात्र बना दिया गया था, वही आज प्रखर आत्मबोध के साथ इन सारी शब्दावलियों को ठुकराकर स्वयं 'दलित' के रूप में अपनी अस्मिता का बोध करा रहा है। प्रख्यात मराठी दलित साहित्यकार शरण कुमार लिंबाले के शब्दों में, 'दलित को 'दया' से घृणा है, उस दया और सहानुभूती नहीं 'अधिकार चाहिए। 'दलित' शब्द और 'दलित साहित्य' अपनी अर्थवक्ता, व्यापकता, सार्थकता तथा अस्मितागत बोध के रूप में आज विद्वज्जनों के मध्य साहित्यिक विमर्ष के विषय बने हुए हैं। अतः 'दलित का आशय' व्यापक दृष्टि और बहस की माँग करता है। दलित शब्द के अन्दर कुचले गए, दबाए गए जनों की जीवन कहानी उतनी ही पुरानी है, जितनी भारतीय हिंदू संस्कृति पुरातन है। चातुर्वण्य व्यवस्था भारतीय संस्कृति की अपनी एक विचित्र विशेषता है। ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र इन चारों वर्णों पर आधारित चातुर्वण्य - व्यवस्था ऋग्वैदिक कल से लेकर अद्यतन जातियों की श्रेष्ठता - क्रम में विद्यमान है। इन चारों वर्णों मं शूद्र सबसे नीचे आता है, जिसका कर्तव्य तीनों वर्णों की सेवा करना बताया गया है।[6]

लगभग 200 ई0 पू0 से 200 ई0 सन् के बीच शूद्रों की स्थित का ज्ञान मनु के विधि ग्रंथ 'मनुस्मृति' से होता है। मनु ने अपने ग्रंथ में शूद्रों के प्रति घोर अमानवीयता का परिचय दिया है।[5]

प्राचीनकाल में शूद्रों की स्थिति नगण्य और उनका जीवन निरर्थक था। उस समय शूद्रों के जीवन का एक ही लक्ष्य था दास्य भाव से ब्राह्मण की सेवा करना। शूद्रों की स्थिति का जायजा लेते हुए इतिहासकार रामशरण शर्मा 'शूद्रों का प्राचीन इतिहास' में लिखते हैं कि उस समय शूद्रों की दशा और खराब हो गई थी।

मौर्यकालीन रचना 'कौटिल्य का अर्थशास्त्र' में कौटिल्य ने विहित किया है कि जब कोई शूद्र अपने को ब्राह्मण कहे, देवताओं की संपत्ति चुराए या राजा का बैरी हो तो, विशैली दवाओं का प्रयोग करके उसकी आँखें नष्ट कर दी जाएं या उससे आठ सौ पठ जुर्माना वसूला जाए। कौटिल्य का अर्थशास्त्र सः आर श्याम शास्त्री, द्वितीय संस्करण, मैसूर, 1924, 10-10

व्याख्याताकारों के अनुसार माना जाता है कि चातुर्वर्ण्य व्यवस्था गुण, कर्म एवं स्वभाव के आधार पर निर्धारित होती थी, जिसमें ऊँच - नीच, उत्तम - अद्यम, स्पृश्य - अस्पृश्य ऐसी संकीर्णताओं के लिए स्थान नहीं था, कर्म के आधार पर ही व्यक्ति अपने वर्ण का निर्धारण और परिवर्तन कर सकता था। परन्तु उत्तर वैदिक काल आते - आते यह वर्णव्यवस्था जन्म पर आधारित होकर जाति के रूप में परिवर्तित हो गई। इस प्रकार चार वर्ण, चार जाति में बंट गए और इन्हीं से हजारों जातियां - प्रजातियां बन गई।[7]

महात्मा गांधी द्वारा दिया गया 'हरिजन' शब्द का विरोध इस वर्ग द्वारा निम्नलिखित तर्कों के आधार पर किया गया :-

• हरिजन शब्द में दया का भाव निहीत है।[6]
• मंदिरों में देवदासियों द्वारा जनित संतानों को भी हरिजन नाम दिया गया, जिनकी सामाजिक पहचान हरामी की थी।
• नामकरण करने वाले स्वयं को हरिजन क्यों नहीं बताते। क्या वे स्वयं हरिजन नहीं है।
• हरिजन शब्द में हीनता का भाव निहीत है।

सन् 1991 में उ.प्र. और म.प्र. सरकारों द्वारा और बाद में केन्द्र सरकार (चंद्रशेखर) सरकार द्वारा 'हरिजन' शब्द को प्रशासनिक, सामाजिक एवं व्यवहारिक स्तर पर प्रयोग न करके यह अध्यादेश जारी किया गया कि उन लोगों को यह नामकरण पसंद नही आया। लेकिन सरकार ने हरिजन के स्थान पर अनुसूचित जाति को शासकीय कार्यों के लिए उचित माना, जबकि दलित शब्द अपनी पहचान बना चुका था।[8]

इक्कीसवीं शताब्दी के आरंभ के पूर्वा पर समय में हिन्दी साहित्य में दलित-चेतना/दलित आंदोलन परएक मजबूत आंदोलन के रूप में उभरा और विकसित हुआ। हिन्दी की कुछ पत्रिकाओं ने स्त्री-विमर्श के साथदलित-चेतना/दलित आंदोलन को प्रमुख स्थान दिया तथा अन्य हिन्दी पत्रा-पत्रिकाओं ने भी दलित-चेतना/दलित आंदोलन पर बहसकरके इसे और भी व्यापक बनाने का प्रयत्न किया। इक्कीसवीं शताब्दी के आरंभिक वर्षों में दलितलेखकों द्वारा प्रेमचंद के विख्यात महाकाव्यात्मक उपन्यास 'रंगभूमि' को सार्वजनिक रूप से जलानेतथा उन्हें दलित-विरोधी लेखक बताने की घटना ने दलित-विमर्श को साहित्य के केंद्र में लाकरस्थापित कर दिया[7]

प्रेमचंद को दलित-विरोध के केंद्र में लाने से हिन्दी-संसार में बड़ीव्यापक प्रतिक्रिया हुई और प्रेमचंद के पक्ष-विपक्ष दोनों में पत्रा-पत्रिकाओं में लेख छपने लगे तथादलित लेखकों की आत्मकथाएं, दलित कहानी-संग्रह, प्रेमचंद की दलित-कहानियों के संकलन तथादलित साहित्य पर महत्त्वपूर्ण आलोचनात्मक पुस्तकों के प्रकाशन का दौर शुरू हुआ।

भारत में शताब्दियों से अनेक परिवर्तन आये। पहले जब भारत में आर्यों का शासन था तब प्रजा धार्मिक, सामाजिक, आर्थिक एवं राजनीतिक रूप से समृद्ध थी लेकिन मुस्लिमों ने जब भारत पर चढ़ाई की तब भारत में राजनैतिक, धार्मिक, आर्थिक और सामाजिक रूप से अंधकार फैल गया था। राजनैतिक पराधीनता ने भारतवासियों को दुर्बलता, दरिद्रता, हीन-भावना और अन्य विकारों से ग्रस्त कर रखा था। पाश्चात्य संस्कृति तथा सभ्यता के साथ हुआ यह साक्षात्कार भारतीय समाज के लिए एक दुर्भाग्यपूर्ण घटना थी।[9] कुछ सौ साल पहले मुगलों का आगमन हुआ था, पर वह लगभग आत्मसात हो चुका था। वे यहाँ लूटने आये थे, लेकिन वे लुटेरे से धीरे-धीरे शासक बन गये और बाद में यहीं के होकर रह गये।[8]

इसी सन्दर्भ में भवानीलाल भारतीय का मत है कि- "विदेशी शासन से उत्पन्न भाव ने भारत के विशाल हिन्दू समाज के धार्मिक आध्यात्मिक तथा नैतिक मूल्यों को अपूरणीय क्षति पहुँचाई थी। सहस्राब्दियों पूर्व के वैदिक औपनिषदिक तथा रामायण एवं महाभारतकालीन समाज में लोगों की इहलोक एवं परलोक के प्रति जो स्वस्थ दृष्टि थी वह तो अतीत की वस्तु हो ही गई थी, मौर्य और गुप्तयुगीन समृद्धि तथा वैभव तत्कालीन लोगों की कलात्मक अभिरुचि, साहित्य, संगीत, काव्य तथा स्थापत्य के क्षेत्र की बढ़ती उपलब्धियाँ भी इतिहास की कहानियाँ बनकर रह गई। उस युग में बृहत्तर भारत का जैसा मानचित्र उभरकर आया और पूर्व के समुद्रपारीय देशों पर भारत की सांस्कृतिक विजय ने जैसी छाप छोड़ी वह सब अतीत की वस्तु बन गई थी। धर्म समाज तथा देश के सामान्य जनजीवन पर पराधीनता की काली घटाओं ने आपत्ति,, विपत्ति, शोषण और अभिशापों की जैसी उपल वृष्टि की, उससे लोगों के दुख और कष्ट बढ़े।"[10]

इस समय लोग आर्थिक रूप से इतने पराधीन हो गये थे कि गरीब और गरीब होने लगे थे और किसान मजदूर बनने लगे थे। गृह उद्योग, कुटीर उद्योग, खेती आदि नष्ट हो गये थे। अंग्रेजों का जुल्म दिन-प्रतिदिन बढ़ने लगा था। राज तो अंग्रेजों ने पहले ही ले लिया था बाद में उन लोगों ने व्यापार में भी अपनी मनमानी चलाई। परिणाम स्वरूप भारतीय जनता गरीब बनती गई और अंग्रेज और धनवान बनते गये। आर्थिक, राजनैतिक रूप से तो हम खत्म हो ही गये थे लेकिन धार्मिक रूप से भी हमारे धर्मगुरुओं ने भारतीय संस्कृति की जड़ को खोखला कर दिया था।[9]

"भारत के लोग यह जानते थे कि उनका पतन क्यों हो सकता है। साक्षरता विवेक की रचना में सहायिका हो सकती है किंतु निरक्षर भी विवेकशील हो सकता है और उसका विवेक अधिक प्रभावपूर्ण और प्रभावशाली हो सकता है, लोग साक्षर भले ही न हों पर सदा से विवेकी रहे हैं और मूल्यों का

मर्म समझते हैं। केवल आर्थिक और काम जगत के मूल्य उनके नियामक नहीं रहे हैं अपितु वे इनका संचालन भी धर्म और मुक्ति की दृष्टि से करते हैं। पुरुषार्थ चतुष्टय का योग ही भारत की कर्मभूमि की पीठिका का आधार स्तंभ है। तब तक सिद्धि की परिकल्पना भारत की मनीषा नहीं कर सकती जब तक की इन चारों की यौगिक उत्पत्ति से जीवन का संचालन न हो। फूट, परस्पर द्वेष, घृणा, सत्ता का लोभ, ज्ञान, विज्ञान की कमी भारत के पराभव का कारण बनी थी और उन्होंने ऐसी प्रथाओं को जन्म दिया था जिनके कारण देश पराभूत हुआ था। इनके मर्म के अंतर तक भारत की मनीषा पहुँच चुकी थी और यह देश अपने इन मूल्यों की स्थापना के लिए व्याकुल था जिनके कारण यह मुक्त और विराट रहा है। सन् 1857 के विप्लव ने उन मूल्यों की पुनर्स्थापना के लिए राष्ट्रीय मंच की नींव रखी।[10]

'नवजागरण' जिसका दूसरा नाम 'पुनर्जागरण' है। इटली, फ्रांस और यूरोप में इसे 'रिनेसांस' कहते हैं। यूरोप में इसकी शुरुआत 13 वीं 14 वीं शताब्दी में हो गई थी। जब हमारे देश में 'लोकजागरण' हुआ था। 'नवजागरण' की शुरुआत 1857 के युद्ध के बाद हुई। वह 19 वीं सदी थी। 14 वीं सदी में लोगों ने एक बार भक्ति आंदोलन के माध्यम से जागृति मिल चुकी थी। इसलिए 19 वीं सदी में जब राजनैतिक क्रान्ति के माध्यम से लोगों में जागृतता सुसुप्त हो चुकी थी वह फिर से जाग उठी। इसलिए इसे नवजागरण काल या पुनर्जागरण काल कहा गया। मध्यकाल जो अपने अवरोध, जड़ता और रूढ़िवादिता के कारण स्थिर और एकरस हो चुका था, वह एक विशिष्ट ऐतिहासिक प्रक्रिया, जो 1857 के विप्लव से उत्पन्न हुई नवजागरण की प्रक्रिया है उसने उसे पुनः गत्यात्मक बनाया। इसी के साथ ही आधुनिक काल का प्रारम्भ माना जाता है। डॉनगेन्द्र ने अपने हिन्दी साहित्य के इतिहास में 'आधुनिक' शब्द के दो अर्थ बताए हैं।" मध्यकाल से भिन्नता और नवीन इहलौकिक दृष्टिकोण" 63 यानी कि आधुनिक काल में मध्यकाल से भिन्न प्रवृत्तियाँ थीं। यहाँ लोगों में जागृति का संचय हुआ था। दार्शनिक चिन्तकों तथा धार्मिक व्यख्याताओं का आविर्भाव हुआ। इस काल में पाश्चात्य संस्कृति का एक बड़ा उत्साह पूरे भारत में फैल गया। अंग्रेजी शिक्षण का प्रचार होने लगा, इसी समय 'मशीनयुग' का आरम्भ हुआ। अंग्रेजों ने अपनी सहूलियतों के लिए और अपनी उत्पादन क्षमता बढ़ाने के लिए कई नई मशीनों की स्थापना करखानों में की। इसी युग में प्रेस, डाक, टेलीफोन, टेलीग्राफ की शुरुआत हुई। रेलवे, बस, मोटर की शुरुआत हुई इसी समय में राजाराम मोहनराय , स्वामी दयानंद आदि समाज सुधारकों ने भारतीय समाज की कुरीतियों जैसे सतीप्रथा, बालविवाह आदि को दूर करने का बीड़ा उठाया और शिक्षा आदि को आगे बढ़ाने का प्रयत्न किया। हमारा देश इस समय तक पूरा जागृत हो गया था इसलिए वे स्वतंत्रता के क्षेत्र में आगे बढ़ रहा था। पूरे देश को इस स्वतंत्रता के लिए एक जुट करना जरूरी था इसलिए भारतीयों ने अंग्रेजी मशीनों का फायदा उठाया और हर एक क्षेत्र की जन भाषाओं में लोगों के समाचार पत्र द्वारा संदेश भेजने लगे। इसी समय हमारे साहित्यकार अपने साहित्य के माध्यम से लोगो में जागृति लाने की कोशिश करने लगे। इसी जागृति की वजह से हमारे देश को आजादी मिली।[8]

'नवजागृति' के आविभार्व से देश के हरेक क्षेत्र में परिवर्तन आने लगा, जिसकी चर्चा हम ऊपर कर आए है। इस परिवर्तन के साथ समाज के लोगों और उनकी सोच में भी परिवर्तन आया। जिसने मध्यकाल की रूढ़ि चुस्तता को खत्म करके आधुनिकता को जन्म दिया। अर्थात् हम यह कह सकते हैं कि नवजागृति या नवजागरण या पुनर्जागरण ही आधुनिक काल का जन्म दाता है। साहित्य समाज का दर्पण है इसलिए समाज में होने वाले हर परिवर्तन की असर साहित्य में जरूर होती है। पाश्चात्य संस्कृति के मेल, विविध मशीनों की उपलब्धि तथा हमारे देश की सामाजिक, धार्मिक, राजनैतिक एवं आर्थिक परिस्थिति के कारण हिन्दी साहित्य में अनेक विधाओं का जन्म हुआ।[6]

निष्कर्ष

भारत की स्वतंत्राता के बाद देश के दलित समाज में क्रांतिकारी परिवर्तन आया - स्वतंत्राता, शिक्षा, आरक्षण, संवैधानिक संरक्षण, जातिगत भेद - भाव पर दंड की व्यवस्था तथा दलित समाज में बुद्धिजीवी वर्ग का उदय, और प्रशासन, राजनीति, शिक्षा आदि में भागीदारी। इसके बावजूद देश में जातिगत भेदभाव की घटनाएं होती रहीं और अस्पृश्यता एवं दमन से देश पूर्णतः मुक्त नहीं हो पाया।[4]

आज का दलित - विमर्श एक तरह से दलित लेखकों तक सीमित होता जा रहा है। दलित लेखक ही असली दलित साहित्य की रचना करते हैं, उनका साहित्य स्वानुभूति का है और परानुभूति कासाहित्य उनका साहित्य नहीं है[3], दलित साहित्य की कोई परंपरा नहीं है, दलित साहित्य स्वायत्त हैऔर उसका

ISSN: 2395-7852 | www.ijarasem.com | Bimonthly, Peer Reviewed & Referred Journal|

| Volume 8, Issue 3, March 2021 |

साहित्य - दर्शन अलग है और साहित्य की मुख्य धारा से उसका कोई संबंध नहीं है। ऐसेही कुछ विचार और तर्क वर्तमान दलित - विमर्श में सुनाई पड़ते हैं, लेकिन गैर दलितों के सहानुभूतिपूर्ण दलित साहित्य को दलित - विमर्श में स्थान न देने से देश के एक बहुत बड़े हिंदू समाजको काटकर अलग कर देना विमर्श की शक्ति और उसकी व्यापकता को कम करना है।[4] दलितलेखकों को यह समझना चाहिए कि इस नीति से उनका पाठक वर्ग कम होता जाएगा और एकबड़े वर्ग के लेखकों की सहानुभूति के कम होने का भी भय बना रहेगा। दलित लेखकों को यह पूरी स्वतंत्रता है कि वे प्रेमचंद के दलित - चिंतन को चुनौती दें, उसकी आलोचना करें, क्योंकि साहित्यका लोकतंत्र सबके लिए खुला है, लेकिन उन्हें प्रेमचंद के समय तथा परिस्थितियों को भी ध्यान में रखना चाहिए। गांधी ने 'हरिजन' नाम से अखबार शुरू किया था, लेकिन अब जाति - विशेष के लिए 'हरिजन' शब्द का प्रयोग वर्जित है, लेकिन आज हम गांधी को इसके लिए अपराधी नहीं बना सकते। गांधी के समय में 'हरिजन' शब्द आदरसूचक था, अर्थात् हरि का जन, ईश्वर का जन। आज 'दलित' शब्द पर कोई आपत्ति नहीं है, किंतु यह संभव है कि कल इसे आपत्तिजनक मान लिया जाए। 'दलित' शब्द को स्वामी विवेकानंद, गांधी, प्रेमचंद आदि ने केवल अस्पृश्य जातियों तक सीमित नहीं किया था।[5] आधुनिक हिन्दी साहित्य के इतिहास में और वह भी पराधीन भारत में, प्रेमचंद पहले ऐसे कथाकार हैं जिन्होंने दलितों के हजारों वर्षों से चली आई यातना, दमन तथा क्रूर मानवीय भेदभाव एवं अपमान का दंश अनुभव किया और फिर भी अपनी मनुष्यता को मरने नहीं दिया। स्वामी विवेकानंद ने इन शूद्र जातियों की यातना एवं मनुष्यता दोनों का उजागार किया और प्रेमचंद ने भीउनके मार्ग का अनुसरण किया[2] और अपने उपन्यासों एवं कहानियों के द्वारा दलित - विमर्श का एक समानुकूल आधुनिक रूप प्रस्तुत किया। उनके विचारों को हम देख चुके हैं, परंतु उनके साहित्य मेंभी दलित - चेतना एक प्रमुख प्रवृत्ति के रूप में दिखाई देती है।[6] जहां तक उपन्यासों का संबंध है, उनके 'रंगभूमि' तथा 'गोदान' उपन्यास में कुछ ऐसे पात्रा तथा प्रसंग हैं जो परानुभूति के बावजूद दलित साहित्य के बड़े कथाकार के रूप में हमारे सामने आते हैं। 'रंगभूमि' उनका महाकाव्यात्मक उपन्यास है और उसका नायक सूरदास दलित जाति का है। दलित लेखकों को यह आपत्ति रही कि सूरदासको दलित बनाकर, उसे अंधा दिखाकर प्रेमचंद ने दलित जाति का अपमान लिया है। इन्हीं कुछ कारणों से दलित लेखकों ने 'रंगभूमि' को जलाया तथा पाठ्यक्रम से हटाने का आंदोलन चलाया, लेकिन वे ऐसा कोई प्रबल तर्क नहीं दे पाए जिससे दलित को अंधा नायक बनाने से दलित जातिका अपमान हुआ हो, बल्कि सच यह है कि सूरदास ने दलित जाति का गौरव बढ़ाया।[7]

प्रेमचन्द एक प्रसिद्ध कहानीकार एवं लेखक थे। उन्होंने अपने लेखन कार्य के माध्यम से भारतीय संस्कृति के विभिन्न पहलुओं को उजागर किया है और यह इसलिए मुमकिन हो पाया क्योकि वे भारतीय संस्कृति को बड़ी गहराई से जानते थे। उन्होंने भारतीय संस्कृति की उस सच्चाई को उजागर किया जिसे लोग जानते हुए भी अन्जान बन रहे थे।[7] इस बारे शिवकुमार मिश्र का मत है कि - "प्रेमचन्द जब कथा के मंच पर आये, भारत की अपनी कथा परम्परा से तो परिचित थे ही, उर्दू और अरबी - फारसी के किस्सों और अफसानों की भी उनको पूरी जानकारी थी। पश्चिम के कथा लेखकों को भी उन्होंने पढ़ा था। बावजूद इसके उनकी रचनाएं कथा लेखन के किसी निश्चित रूप में ढलने के बजाय अभिव्यक्ति के उनके अपने दृष्टिकोण की अनुरूपता में सामने आई, कि कहानी को पारदर्शी होना चाहिए, वह सारगर्भित हो और अपने संवेदनात्मक उद्देश्य को पाठक तक भली भाँति संप्रेषित कर पाने में समर्थ हो।" [2] डॉ. रामविलास शर्मा ने प्रेमचंद के कहानी कहने के ढंग पर विचार करते हुए लिखा है कि - "कहानी फुरसत की चीज है, काम धाम से छुट्टी पाकर सुनने की चीज है। और जल्दबाजी से काम बिगड़ जाता हैं। प्रेमचन्द कहानी सुनाते है, अक्सर लच्छेदार जबान में, वाक्यों को स्वाभाविक गति से फैलाने की आजादी देकर। अंग्रेजी बाग के माली की तरह उनकी डालियाँ और पत्ते कतर कर नहीं; फूलों और पत्तियों को हवा में बढ़ने और लहराने की आजादी देकर। जिन्दगी के अनुभवों पर टीका - टिप्पणी भी साथ में चला करती है, व्यंग्य, अनूठी उपमाएं और हास्य बीच - बीच में पाठक को गुदगुदाते रहतें हैं।"[8]

नवजागृति शब्द को अंग्रेजी में 'रेनेसा' कहा जाता है। रेनेसा या रिनेसांस' फ्रेन्च शब्द है जिसका अर्थ पुनर्जन्म (Rebirth) होता है। "रिनेसांस शब्द फ्रांसीसी इतिहासकार मिशले (1798-1874 ई.) ने गढ़ा था और बुर्कहार्ट (1818-1897 ई.) द्वारा वह ऐतिहासिक अवधारणा में विकसित हुआ।" [1] प्राचीन ग्रीक, रोमन साहित्य एवं संस्कृति का पुनर्जन्म यानी नवजागृति ऐसा अर्थ माना जाता है। वैसे यह पूर्ण सच नहीं है। "रिनेसांस' शब्द का अर्थ समय - समय पर परिवर्तन होता है। 16 वीं सदी के निकट इसका अर्थ था लैटिन और ग्रीक साहित्य का पुनरुथान। इटली निवासी इस आंदोलन को 'रिनेसिमेन्टो'

या क्लासिकी भाषाओं और साहित्य का 'पुनर्जन्म' कहते हैं। यह विद्या या कला का 'पुनर्जन्म' या 'पुनरुत्थान' मध्ययुग और आधुनिक काल को अलग करने के लिए कल्पित किया गया था।" नवजागृति से मानवता का मूल्य बढ़ा और हर क्षेत्र में विकास तेजी से होने लगा। यानी हम यह कह सकते हैं कि प्राचीन काल में विद्या, कला, साहित्य एवं संस्कार के पुनर्जन्म के आन्दोलन को नवजागृति के नाम से पहचाना जाता हैं।[9]

प्रेमचंदजी के कथा साहित्य में मध्यमवर्ग की दयनीय स्थिति का हृदयस्पर्शी यथार्थोन्मुखी चित्रण मिलता है। प्रेमचंद के दलित समाज पर गंभीरतापूर्वक विचार किया और उनके विचार 'प्रेमचंदः विविध-प्रसंग', (संपादक: अमृतराय) में 'छूत-अछूत' शीर्षक संकलित हैं। ये सभीविचार टिप्पणियों के रूप में 19 दिसंबर, 1932 से 14 मई, 1934 तक 'जागरण' साप्ताहिक में प्रकाशित हुए थे। इनटिप्पणियों में प्रेमचंद गांधी के साथ-साथ चलते हैं और अपने दलित-चेतना के कुछ सूत्रा प्रस्तुत करतेहैं। प्रेमचंद मंदिर प्रवेश के प्रसंग को उठाते हैं जो गांधी के अछूतोद्धार आंदोलन का एक प्रमुख कार्यथा। प्रेमचंद ने अपनी कहानियों में भारतीय समाज की कुरीतियों का बखूबी प्रतिपादन किया है। प्रेमचंद ने अपनी कहानियों में उस समय के वास्तविक भारत को अपने पात्रों एवं संवादों के माध्यम से सही मायने में चरितार्थ किया है। प्रेमचंदजी गाँधीजी से प्रभावित थे, इसके साथ-साथ वे भारत के किसानों एवं दलितों पर हो रहे अत्याचार के खिलाफ थे।[10]

संदर्भ

1. प्रेमचंद - जीवन और कृतित्व - हंसराज 'रहबर' रामलालपुरी, आत्माराम एण्ड संस, काश्मीरी, दिल्ली - 6
2. प्रेमचन्दः उनकी कहानीकला - सत्येन्द्र, साहित्य रत्न भंडार, आगरा
3. प्रेमचन्द - डॉ. जगतनारायण हैकरवाला, प्रकाशक - अक्षरपीठ, प्रकाशन - 84, मोहिलनगर, इलाहाबाद - 6, प्रथम संस्करण - 1972
4. प्रेमचंदः एक अध्ययन - राजेन्द्र गुरू (जीवन, चिन्तन, कला) मध्यप्रदेशीय प्रकाशन, भोपाल, वर्ष - 1958
5. प्रेमचन्द विश्वकोष - कमलकिशोर गोयनका, भाग - 1, प्रकाशक - साहित्य निधि, सी - 38, ईस्ट कृष्णनगर, दिल्ली - 110005, प्रथम संस्करण - 1981
6. प्रेमचन्द घर में - श्रीमती शिवरानी देवी, आत्माराम एण्ड संस, दिल्ली
7. नवजागरण और आचार्य रामचन्द शुक्ल - बलीसिंह, शंकर पब्लिकेशन, भजनपुरा, दिल्ली - 110053, प्रथम संस्करण - 2000
8. भारतीय नवजागरण और भारतेन्दुः नर्मद युग का साहित्य - महावीर सिंह चौहान, अनुस्नातक हिन्दी विभाग, सरदार पटेल विश्वविद्यालय, वल्लभ - विद्यानगर, प्रथम संस्करण - 1995
9. नवजागरण के पुरोधा: दयानंद सरस्वती - डॉ. भवानीलाल भारतीय, प्रकाशक - वैदिक पुस्तकालय, परोपकारिणी सभा, दयानन्दाश्रम, केसरगंज, अजमेर, प्रथम संस्करण - 1983
10. हिन्दी साहित्य का बृहद इतिहास - भाग - 9, संपादक - सुधाकर पाण्डेय, नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी, प्रथम संस्करण - 1977